IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
Volume 7, Issue 1, July 2019
Impact Factor: 4.819

धार्मिक प्रकृति और धर्म के कार्य

Dr. Archana Varma
Associate Professor, Department of Psychology
D. G. (P. G.) College, Kanpur, India

मनोविज्ञान धर्म की बातो का कहॉ तक समर्थन करता है और उन्हें मानवजीवन के लिए कहॉ तक हितकर बताता है, इन सब बातों के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि धर्म शब्द का अर्थ क्या है ? धर्म शब्द का उपयोग मानव कर्तव्य का बोधक है इसका उपयोग मजहब के लिये भी होता है। सर्वोतम धर्म तो वह है जो हमें परमानंद की प्राप्ति करवाता है। धर्म के इस अर्थ में केवल यही प्रश्न मनोविज्ञान में उठ सकता है कि मनुष्य की कर्तव्य बुद्वि उसके भीतरी जन्मजात स्वभाव का अंग है या वातावरण के अनुसार है। यदि मानव में कर्तव्य के भावना हो तो वह सुखी रहेगा या दुखी **?**

इन प्रश्नों के उत्तर मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार से दिये है इसके लिये सर्वप्रथम पुरुषार्थ को समझना जरुरी होगा। ''पुरुषार्थ'' धर्म का दुसरा अर्थ है। यह चार पुरुषार्थो में से एक है। मनुष्य स्वभाव की पुर्णता चारो पुरुषार्थो की प्राप्ती से ही होती है। जो व्यक्ति दुसरों के सेवा में अपने आप को समर्पित नहीं करता वह समाज में सम्मान नहीं पाता। केवल मनुष्य में ही यह शक्ति है कि वह दुसरों के हितों को ही अपने हित के समान माने और उनकी पूर्ति के लिये सदा प्रयत्नशील रहें, तभी वह सम्मान का भागी रहेगा और उसे समाजिक सुरक्षा प्राप्त होगी।

कई मनोवैज्ञानिकों ने धर्म की अलग अलग व्याख्या की है – **विलियम जेम्स** ने कहा है कि ' धर्म मनुष्य की भावनात्मक आवश्यकता है'', ईश्वर है या नहीं परन्तु ईश्वर का विचार ही मनुष्य को सुरक्षा की अनुभूति कराता है।

सिगमंड फ्राइड ने **The Future of an Illusion** नामक पुस्तक में कहा है कि 'मजहब एक प्रकार का पागलपन है, जिसका अंत विज्ञान के आलोक की वृद्वि से अनायास ही हो जायेगा।'

प्रसिद्व मनोवैज्ञानिक चिकित्सक **चार्ल्स युंग** का कहना है कि जिन लोगों की धार्मिक भावनायें सुदृढ़ रहती है उन्हें मानसिक रोग नहीं होते है किसी भी रोगी का मानसिक रोग तबतक पुरी तरह नहीं जाता, जबतक वह एक ठोस जीवन दर्शन नहीं प्राप्त कर लेता है। धर्म मनुष्य भावनात्मक विकास का साधन है, जिसका कोई सहारा नहीं है वह धर्म के आधार पर जी लेता है।

धर्म, विज्ञान और जादू तीनों ही मानव को प्रभावित करते आ रही है। मनोविज्ञान के परिधी में तीनों ही क्रियाएँ आती है। धर्म आस्था पर आधारित है, आस्था मनोविज्ञान पर आधारित है।
विज्ञान कार्य कारण संबंधों पर आधारित वैज्ञानिक पहलू दर्शाता है। जादू विज्ञान का ही एक प्रकार कहा जा सकता है।

धर्म और मनोविज्ञान

यह मानव जीवन के आरंभिक काल से ही चला आ रहा है। मानव के मन में सृष्टि को लेकर कई अवधारणायें प्रचलित है जिसमें एक प्रमुख अवधारणा एक दैवीय शक्ति है । ऐसे तो उदविकासीय सिद्वांत ,वैज्ञानिक सिद्वांत आदि प्रचलित है। प्रारांभिक काल से ही मानव के जीवन को समझने के लिये हम देखते है कि आज भी आदिवासी समाज में टोटम और टैबु का प्रयोग प्रचलित है। मनोविज्ञान और धर्म समाज को जोड़ने एवं उसके निर्माण में देखा जाता है। प्रायः धार्मिक प्रयोजन से होने वाले उत्सवों में लोगों की सहभागिता देखते ही बनती है यह कहावत **कनियुगे संघे शक्ति** धार्मिक आयोजन में अहम भूमिका निभाता है। समूह में जब व्यक्ति रहता है तो उसका मनोबल काफी उच्च देखा जाता है । ऐसा देखा गया है कि दब्बु से दब्बु व्यक्ति भी समुह में दबंग की तरह व्यवहार करते है।

प्रसिद्व समाज शास्त्री **इमाइल दुर्खिम** ने धर्म पर आधारित अपने शोध में इसका वर्णन किया है। धर्म को ही आधार स्वरुप में मनोवैज्ञानिक प्रभाव के लिये माना गया है। अतः स्पष्ट है कि मानव जीवन को प्रभावित करने में धर्म एक महत्वपुर्ण भुमिका निभाता है। धर्म पुर्णतः मनोवैज्ञानिक कारक है। मानव पर धर्म आधारित मनोविज्ञान गहरा छाप रखता है। विश्व के सभी समाजों में अपने सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित धर्म प्रचलित है ऐसा देखा गया है कि समाज में प्रचलित धर्म यथा – हिन्दु अपने सभी धार्मिक आयोजन में स्नान की महत्ता को प्राथमिकता देते है। जाहिर सी बात है कि यहॉ पानी की प्रचुरता थी गर्म प्रदेश के कारण स्वभाविक तौर पर स्नान की महत्ता स्वीकारी गई। वहीं इस्लाम धर्म में इत्र का प्रयोग वृहत प्रचलित है अरब में पानी की कमी के कारण लगातार स्नान संभव नहीं था। अतः दुर्गन्ध से बचने के लिये इत्र का व्यवहार करते थे। पुन' युरोप को देखे तो अंग्रेजों द्वारा ठंड के कारण स्नान के लिये पानी की अनुपलब्धता के कारण दुर्गन्ध से बचने के लिये फुलों की प्रचुरता के

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
Volume 7, Issue 1, July 2019
Impact Factor: 4.819

साथ प्रयोग करते है। ये सब कारक आज की तिथि में मनोवैज्ञानिक कारण है। धर्म मनुष्य के भावनात्मक विकास का कारण है, जिसका कोई सहारा नहीं है वह धर्म के आधार पर जीवन जी लेता है। इनकी अपने अपने स्थान पर मनोवैज्ञानिक उपयोगिता है। भौतिक दृष्टि पर आधारित मनोविज्ञान धर्म के नाम पर अधुरा ही है यह बहिर्मुखी चिंतन पर आधारित है। संपुर्ण मनोविज्ञान के लिये अंतर्मुखी चिंतन अनिवार्य है। संसार के धर्म इसी प्रकार के चिंतन के परिणाम है।

विचार अपने आप में भय का स्त्रोत है। विचार समय है, कल का विचार सुख या पिड़ा है यदि यह सुखद विचार इसका पिछा करता है इस भय के साथ की कहीं यह खत्म ना हो जाये । विचार–स्मृति और अनुभव की कार्य प्रणाली की संपदा ही भय का अंत है। भय अनेक प्रकार के होते है । दुष्मनों का भय, जरा–व्याधि का भय और सबसे बड़ा भय मृत्यु का होता है। इन भयो से मनुष्य छुटकारा पा सकता है और वह प्रभु के चिंतन करने से। कंस ने भी भगवान का चिंतन किया था। उसने मृत्यु के भय से भगवान का चिंतन किया और मुक्ती पा लिया और षिषु पाल ने भी प्रभु को याद किये थे पर ईर्ष्यावष याद किये थे पर उन्हें भी मुक्ति मिली। भविष्य की अनिष्चितता से भय उत्पन्न होता है। कोई भक्त कभी भयभीत नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि भगवान कृष्ण ही सृष्टि के संचालक है। एक पत्ता भी उनके इजाजत के बीना नहीं हिलता। जैसे ही व्यक्ति कृष्ण भाव में आता है, यह समझ लेता है कि उस पर कृष्ण का प्रेम बरस रहा है, वैसे ही सारे भय समाप्त हो जाते है। तत्पष्चात मनुष्य शांति का अनुभव करने लगता है। श्रील प्रभुपाद ने शांति का सुत्र बताया है – जो भगवान से नाता जोड़ लेता है, समझ लेता है कि भगवान स्वंय हर जीव की चिंता करते है, उसका सारा दुख, भय समाप्त हो जाता है। परम आंदन भौतिक साधनों से नहीं वह तो भगवान से प्रेम करने पर ही मिलता है।

डेविड एमील दुर्खाइम

प्रमुख समाजषास्त्री थे इनका जन्म एपीनाल, लोरेन के एक फ्रांसीसी यहुदी परिवार में हुआ था। ये अपने रचना में आधुनिक और पारस्परिक समाजों का फर्क दिखाते हुये यह प्रतिपादित करते है कि आधुनीक समाज जहां श्रम के विषेष पर आधारित होता है वंही यह समाज साझे विष्वास पर चलता है। इस तरह आधुनिक समाज अपने नियम से संचालित होता है जबकि पारस्परिक समाज के नियम बाहरी विष्वास और अनुमोदन टिके होते है। इसलिए इन विष्वासों पर आधारित व्यवस्था शक्ति और दबाव के जरीये ही कायम रह सकता है। आधुनिक समाज के अंतर्गत विद्वानों का मानना है कि सामाजिक रुपों की विवधता को नियमों के विष्टि ढांचे से जोड़कर देखने का यह सूत्रीकरण अपराध और कानून के समाज शास्त्री अध्ययनों के लिये बुनियादी प्रेरक तत्व रहा है। दुर्खाइम मानते थे की समाज के पारस्परिक और आधुनिक रुपों में विभ्रम के कारण आधुनिक समाजों पर पारस्परिक कानून या नियम थोपने की प्रवृति ही कई समाजिक समस्याओं के लिये जिम्मेदार रही है। आधुनिक समाजों की यह व्याख्या दुर्खाइम के कृति की विष्टि उपलब्धि मानी जाती है। वे दिखाते है कि समाजिक संस्थाओं के अंदर स्वतः ही एक शक्ति का तत्व होता है जो अपने सहभागियों से एक निष्चित व्यवहार की मांग करता है। दुर्खाइम इसलिये इस बात पर जोड़ देते थे कि व्यक्ति के बजाय सामाजिक प्रकियाओं का अध्ययन किया जाना चाहिये। उनके अनुसार इन सामाजिक प्रकियाओं का ठोस रुप संस्थाओं और व्यवहार में अभिव्यक्त होता है। उनके मुताबिक सामाजिक व्यक्ति का जन्म तथा तर्क बुद्वि का विकास भी इसी प्रकिया से निरस्त होता है। इस रचना में उन्होंने यह भी कहा है कि समस्त अवधारणाओं की उत्पति समाज से ही होती है। इसिलिए तर्क, भाषा और अर्थ की समझ विकसित करने के लिये इस बात का अध्ययन किया जाना चाहिए कि शब्दों और अवधारणाओं का किन समाजिक रुपों और संदर्भो में इस्तेमाल किया गया है। यहां **दुर्खाइम** जी धर्म को समाज का प्रकार्य बताते हुये एक और अहम सुत्रीकरण करते है कि धर्म सामाजिक व्यवस्थाओं को कायम रखने का माध्यम है। दुर्खाइम धार्मिक विष्वासें की सत्यता को सीधे तो नहीं नकारते लेकिन उनके लिए धर्म का सत्य उसकी इस क्षमता से तय होता है कि वह कर्मकांडो को प्रोत्साहित कर सकता है या नहीं।

आधुनिक और पारस्परिक समाजों में धर्म की भुमिका को लेकर दुर्खाइम का सूत्र भी अधिक महत्वपूर्ण है कि समाज की इन दो अलग प्रकार में धर्म के प्रकार एक जैसे नहीं होते। पारस्परिक समाजों में तो धर्म सामाजिक नियंत्रण का औजार होता है जबकि आधुनिक समाजों में उसका यह प्रकार गैर–जरुरी हो जाता है क्यों कि आधुनिक समाजों में वह ज्ञान मीमांसा का प्रकार्य निभाने लगता है। इसलिए सामाजिक व्यवस्था में इसकी भुमिका पहलें जैसी नहीं रह जाती। दुर्खाइम का यह मत था कि मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी के रुप में बनाये रखने के लिये सामाजिक प्रकियाओं और साहचर्य के खास रुपों की दरकार होती है। अर्थात सामाजिक मनुष्य को उसके निष्चित सामाजिक विन्यास और सन्दर्भ से अलग हटाकर नहीं देखा जा सकता इसलिए दुर्खाइम सचेत भी करते है कि अगर मनोविज्ञान, अर्थषास्त्र या दर्शनशास्त्र के अध्ययन की कोई पद्वति सामाजिक परिघटना को केवल व्यक्तिओं को संचित गतिविधियों के आधार पर समझने का कोषिष करती है तो उसे समाज जैसे महत्वपूर्ण पक्ष को दरकिनारे करने का दोषी समझा जाना चाहिये। लेकिन उन्नीसवीं सदी के जिस दौर में दुर्खाइम समाजशास्त्र को व्यवस्थित कर रहें थे उस समय स्त्रीयों के पश्नों पर बहुत कम सामाजिक चिंतक विचार कर रहें थे। सुसाइड में उन्होंने आत्महत्या की एक

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
Volume 7, Issue 1, July 2019
Impact Factor: 4.819

भाग्यवादी किस्म का जिक्र किया है जिसे वे मुखतः स्त्रियों के साथ जोंड़कर देखते है। उनका यह ख्याल भी था कि विवाह पुरुषों के लिए तो लाभकारी तो होता है लेकिन स्त्रियों के जीवन पर नाकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

The Division of Labour

में दुर्खाइम मूलवासियों के हवाले से बताते हैं कि ऐसे समुदायों में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पुरुषों के मुकाबले कम नहीं होती थी जबकि इसके विपरीत आधुनिक समाजों में स्त्री की हैसियत कमजोर होती गई तत्कालीन समाज की औसत प्रवृति स्त्री को कोमल और कमजोर के रुप में चित्रित करती है। मार्क्सवादी धारा के समाज शास्त्री अपने लेखन में दुर्खाइम के चिंतन में निहित रैडिकल स्वरुप को महत्व देते हुये पार्सस के दृष्टिकोण को प्रतिसंतुलित करने का प्रयास किया जो दुर्खाइम को राजनितिक रुप से रुढ़िवादी साबित करने पर जोर देता है।

यह मानव की अनुभूतियों के रुप में सभी तथ्य सत्य है एवं मनुष्य के अचेतन मन में है। कोई भी मनुष्य इनकी अनुभूतियों का प्रस्तुती करता है, उसका स्वरुप एक आदर्श के लिये बने रहता है। अतः स्पष्ट है कि धर्म पुर्णतः मनोविज्ञान पर आधारित है।

संदर्भ सूचि :

[1]. The Elementary Forms of religious life (1912). **bekby nqf[kZe**
[2]. A Theoretical Basis of Human Behaviour, Pedological Semminar **LVsuyh gkWy**
[3]. The Psychological of learning. **xqFkjh**
[4]. MORAL EDUCATION (1925)
[5]. The Future of an Illusion – **flxeaM QzkbM**